# जून १९९८ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

## कृतज्ञता ज्ञापन

मानव जाति के इतिहास में कभी-कभारही ऐसा कोईधर्मपुरुष जन्म लेता है जो कि जनकल्याण के लिए ऐसा महत्त्वपूर्ण कामकर जाता है जिससे कि उसका प्रभाव सदियों तक संसार के लोगों के जीवन पर कायमरहता है। सयाजी ऊ बा खिन ऐसे ही धर्मपुरुष थे, संत पुरुष थे। बर्मा में जिस गुरु-शिष्य परंपरा ने भारत से प्राप्त हुई भगवती विपश्यना विद्या कोसदियों तक शुद्ध रूप में कायमरखा, वे उस परंपरा के जगमगाते सितारे थे।

वैसे तो सारे विश्व के प्रति उनके हृदय में अपार करुणा छलकती रहती थी, परंतु भारत के प्रति उनका प्रेम अनुपम था। वे कहा करते थे कि मैं न जाने कितनी बार भारत में जन्मा हूं और न जाने कितने जन्मों में मैंने हिमालय की गिरि-गुहाओं में ध्यान किया है।

इस सदी के छठे दसक में जब बिहार में लगातार २ वर्ष तक अकालपड़ा तो वहां के दुर्भिक्ष-पीड़ित लोगों के प्रति उनके मानस में करुणा का सागर उमड़ पड़ा। रंगून के विपश्यना केंद्र के धर्मकक्ष के समीप एक कुशल शिल्पी द्वारा उन्होंने हिमालय की एक प्रतिकृति बनवायी और प्रतिदिन प्रातः चार बजे उठ कर ध्यान के पश्चात इस प्रतिकृति के पास खड़े होकर देर तक मंगल मैत्री दिया करते थे। भारत के लोग दुःखमुक्त हों! भारत के लोग धर्मलाभी हों!

जिस देश में बोधिसत्व सिद्धार्थ गौतम ने सम्यक सम्बोधि प्राप्त की, जो कि केवल उसके लिए ही नहीं, बल्कि सारे विश्व के लिए परम कल्याण का कारण बनी, आज उसी देश के लोग कितने पीड़ित हैं, कितने दरिद्र हैं, कितने दुःखी हैं! वहां धर्म के नाम पर जाति-पांति का, वर्ण-वर्ग का, ऊंच-नीच का, मत-मतांतरों का, संप्रदाय-संप्रदायों का कितना हिंसात्मक विग्रह-विद्रोह चल रहा है। द्वेष-दुर्भावनाओं का और अमानुषिक हत्याओं का कितना आतंक छाया हुआ है। जिस पावन धरती पर विपश्यना के रूप में शुद्ध सद्धर्म की उत्पत्ति हुई और जो देश अनेक सदियों तक विश्व के दुखियारों को यह विद्या बांटता रहा, वही देश अब इस विद्या के लाभ से सर्वथा वंचित है। इस महान विद्या का लाभ लेना तो दूर रहा; वहां के लोगों का कितना बड़ा दुर्भाग्य है कि उन्होंने 'विपश्यना' शब्द ही भुला दिया। उस महान भारत देश को अपनी यह पुरातन अध्यात्म विद्या पुनः प्राप्त होगी तो सारे विग्रह-विद्रोह अपने आप दूर हो जायेंगे। वहां पुनः सुख-शांति और समृद्धि फैलेगी।

वे बार-बार कहते थे कि सदियों पहले बर्मा ने भारत से यह अनमोल रत्न प्राप्त किया था। अब समय आ गया है। मुझे यह ऋण चुकाना है। जिसे हमारे गुरुजनों ने प्रयत्नपूर्वक संभाल कर रखा, वह अनमोल धरोहर भारत को लौटानी है। वे बार-बार अपने करुणचित्त से यह कल्याणी भावना प्रकट किया करते थे और बहुत चाहते थे कि वे स्वयं भारत आकर यह ऋण चुकाएं, परंतु राजनैतिक परिस्थितियों के कारण वे भारत नहीं आ सके।

लेकिन फिर भी बार-बार उनके मुँह से यह धर्मवाणी निकलती रहती थी कि अब विपश्यना का डंका बज गया है। यह शीघ्र ही भारत लौटेगी। उन्हें इस बात का पूर्ण विश्वास था कि अतीतकाल के किसी संत की यह भविष्यवाणी अवश्य सफलीभूत होगी, जिसमें यह कहा गया था कि तथागत के २५०० वर्ष बाद बर्मा से यह विद्या पुनः भारत लौटेगी और वहां के अनेक पुण्यपारमी संपन्न समझदार लोगों द्वारा सहर्ष अपनायी जायेगी। यों भारत का कल्याण करती हुई यह विद्या सारे विश्व में फैलेगी और प्रभूत लोक कल्याण करेगी।

उनकी मजबूरी थी, वे स्वयं नहीं आ सके परंतु उन्हें अपना मंगल स्वप्न पूरा करना था। अतः भारतीय मूल के अपने धर्मपुत्र को इस विद्या में जितना कर सकते थे, उतना निपुण किया और उसे अपने प्रतिनिधि के रूप में भारत भेजा। यों लगभग दो हजार वर्ष के लंबे अंतराल के बाद इस महान देश में भगवती विपश्यना का पुनः आगमन हुआ। पिछले २९-३० वर्षों में जितना काम हुआ, वह पर्याप्त तो नहीं ही है, परंतु संतोष इसी बात का है कि आरंभ तो हुआ और आरंभ भी अच्छा ही हुआ।

हम आभारी हैं उन महान संत के, जिनकी लगन और निष्ठा के कारण ही भारत को अपनी यह खोयी हुई अनमोल साधना संपदा पुनः प्राप्त हुई। हम उस संत के ऋण से कैसे उऋण हो सकते हैं! उपाय यही है कि एक तो हम स्वयं इस विद्या में पकें और दूसरे अधिक से अधिक लोगों को इस विद्या के संपर्क में लाकर उनके कल्याण में सहायक बनें। यही तो गुरुदेव का कल्याणकारी मंतव्य था। यही उनके जीवन का मांगलिक ध्येय था।

अगला वर्ष उन संत पुरुष सयाजी ऊ बा खिन का जन्मशताब्दी-वर्ष है। उनकी पावन स्मृति में मुंबई महानगरी में एक विशाल विपश्यना स्तूप के निर्माण का शिव संकल्प है। इस निमित्त एक प्रबल पुण्यशाली विपश्यी साधक के परिवार ने अत्यंत बहुमूल्य जमीन प्रदान की है। यह धर्म-स्तूप विपश्यना के प्रचार-प्रसार का एक विशिष्ट प्रभावशाली माध्यम बनेगा। भगवान बुद्ध के अंतिम आदेश के अनुसार इसके विशाल धर्मकक्ष में उनके अस्थि-अवशेष स्थापित किए जायेंगे। उनकी धर्म-तरंगों का लाभ लेते हुए समय-समय पर लगभग १० हजार विपश्यी साधक साधिकाएं सामूहिक साधना में भाग ले सकेंगे। वहीं उनके लिए एक दिवसीय शिविर भी लगते रहेंगे।

कभी-कभी किसी जिज्ञासु व्यक्ति द्वारा यह पूछा जाता है कि यह विशाल इमारत यांगों के श्वेडगोन पगोडा की प्रतिकृति के रूप में क्यों बनायी जाय? इसे किसी भारतीय मंदिर का रूप क्यों न दिया जाय। समझें, ऐसा क्यों किया जा रहा है। स्तूप की संरचना भीतर से वर्तुलाकार हो तो ध्यान की तरंगें अधिक स्थाई और बलवान होती हैं और यह धर्म-स्तूप विपश्यना ध्यान के लिए ही बनाया जा रहा है। इसका प्रयोग किसी मंदिर के रूप में नहीं होगा। इस स्तूप में कोई मूर्ति स्थापित नहीं होगी। न कोई षोडसोपचार

पूजन होगा। न कोई भजन-कीर्तन होगा। न कोई पूजन-अर्चन होगा। न कोई धूप-दीप जलाये जायेंगे। न यहां पत्र-पुष्प, नैवेद्य आदि चढ़ाए जायेंगे। न घंटे-घड़ियाल बजा कर किसी की आरती उतारी जायगी। न अन्य किसी प्रकार का कोई सांप्रदायिक कर्मकांड किया जायगा। धर्मस्तूप के अंदर केवल बड़ी संख्या में साधक ध्यान करेंगे। वह भी किसी मूर्ति का ध्यान नहीं, किसी आकृति का ध्यान नहीं, कोई नाम-जप नहीं, कोई मंत्र-जप नहीं। केवल विपश्यना ध्यान के लिए ही इस स्तूप का उपयोग होगा जिसमें साधक अपने भीतर मनोविकारों के उद्गम के कारण और उनके निवारण के उपाय के प्रति सजग रहने का ही अभ्यास करेगा। विपश्यना का यह अभ्यास किसी संप्रदाय से जुड़ा हुआ नहीं है। इसकी सार्वजनीनता स्वयंसिद्ध है। इसके लिए किसी संप्रदाय में दीक्षित होने की जरूरत नहीं। जैसे आसन और प्राणायाम शरीर की कसरत है वैसे ही विपश्यना मन की कसरत है। इसका अभ्यास किसी भी संप्रदाय का कोई भी व्यक्ति करे, उसे वही परिणाम मिलते हैं। वही फल प्राप्त होते हैं। स्वच्छ जीवन जीने की कला हाथ लग जाती है। जीवन सुख-शांति से भर उठता है। ऐसा प्रत्यक्ष हो रहा है। विभिन्न संप्रदायों के लोग भारी संख्या में शिविरों में सम्मिलित होकर लाभान्वित हो रहे हैं।

विपश्यना स्तूप का निर्माण किसी संप्रदाय की स्थापना के लिए नहीं हो रहा है। इसके विपरीत लोगों को विभिन्न सांप्रदायिक बंधनों से छुड़ा कर सर्वमान्य शील-सदाचार का जीवन जीने और एतदर्थ चित्त को एकाग्र और निर्मल करने की व्यावहारिक विद्या के लिए हो रहा है। इस धर्म स्तूप का यही उद्देश्य है कि जो विपश्यी हैं वे यहां आकर विपश्यना में और अधिक पकें; जो नहीं हैं वे विपश्यना में शामिल होने की प्रेरणा प्राप्त करें। गुरुदेव ऊ बा खिन बर्मा से भारत के लिए कोई संप्रदाय भेजने के लिए आतुर नहीं थे बल्कि सर्वलोकहितकारिणी विपश्यना भेजने के लिए आतुर थे। संप्रदाय तो यहां अनेक हैं और उनके जो परिणाम आ रहे हैं वे भी स्पष्ट ही हैं। 'सम्प्रदाय' समता प्रदान करने के लिए होता है। परंतु ये तो समता प्रदान करने के स्थान पर समाज को विषमता ही प्रदान कर रहे हैं। ऐसी हालत में एक और संप्रदाय यहां आयेगा तो देश का क्या भला करेगा? बल्कि हानि ही करेगा। सार्वजनीन शुद्ध धर्म ही भारत का और विश्व का कल्याण करेगा –यही उन्हें अपेक्षित था और इसीलिए उनकी पावन स्मृति में उनके कल्याणकारी मंतव्य को पूरा कर सकने के उद्देश्य से विपश्यना धर्मस्तूप का निर्माण होने जा रहा है।

फिर एक प्रश्न उठता है। दस हजार साधकों के लिए एक वर्तुलाकार छत के तले, बीच में खंभों की अड़वार के बिना विशाल धर्मकक्ष का निर्माण करना तो समझ में आता है पर इसके लिए बाहरी ढांचे को यांगों के श्वेडगोन के अनुरूप बनाने का क्या कारण है?

इसे भी समझना चाहिए। धर्म की शुद्धता समझ में आयेगी तो यह भी समझ में आयेगा कि कृतज्ञता धर्म का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग है। जिस म्यंमा देश ने हमारे भारत की यह अनमोल धर्म-निधि को लगभग दो हजार वर्षों तक इतनी सजगता के साथ शुद्ध रूप में कायम रखा और अब हमारे भले के लिए हमें लौटाया है, उसका उपकार मानते हुए उनके प्रति कृतज्ञता का भाव जगना नितांत आवश्यक है, धर्मानुकूल है। भूतकाल में जब यह विद्या पड़ौसी देशों में गयी तो वहां के लोगों ने जो स्तूप बनाए वे अपने यहां भारत के उन दिनों के स्तूपों की प्रतिकृति के रूप में ही थे। उसका एक प्रमुख कारण यही था कि इन स्तूपों को देख कर वहां के लोगों के मन में सदियों तक भारत के प्रति कृतज्ञता का भाव जागे जो कि अब भी जागता ही हैं। ठीक इसी प्रकार बरमा से यह विद्या हमें वापस मिली है तो वहां के प्रसिद्ध स्तूप के अनुरूप बने। यहां के इस स्तूप को देख कर भारत के लोग भी बरमा के प्रति अपने मन में कृतज्ञता के भाव जगायेंगे, सदियों तक जगाते रहेंगे। इसी अभिप्राय से इस आकृति को स्वीकार किया गया है।

भव्य स्थापत्य कला से परिमंडित यह गगनचुंबी विशाल स्तूप भारत की पुरातन अध्यात्म विद्या विपश्यना का सिर ऊंचा रखते हुए भारत के तथा विश्व के अनेक लोगों को आकर्षित करेगा, आमंत्रित करेगा और जो इस पवित्र भूमि पर आयेंगे, उनमें से अनेक विपश्यना से जुड़ कर अपना कल्याण साध लेंगे। धर्मस्तूप के निर्माण का यह प्रमुख पावन उद्देश्य है।

अधिक से अधिक लोग विपश्यना से लाभान्वित हों, भारत में ही नहीं बल्कि सारे विश्व में सभी हिंसात्मक झगड़े-फसाद दूर हों! एक बार फिर भारत में विपश्यना की पावन धर्मगंगा प्रवाहमान हो और इसके प्रभाव से विपुल विश्व कल्याण हो! इस धर्मभावना से उद्वेलित उन महान गृही संत सयाजी ऊ बा खिन के प्रति अपनी गहरी कृतज्ञता प्रकट करने का यह एक मंगल प्रयास है। कृतज्ञता सचमुच उत्तम मंगल है।

## दान चेतना

इस ऐतिहासिक महान धर्म यज्ञ में अपनी ओर से आहुति डालते हुए पुरातन भारत की दान देने की शुद्ध चेतना भी समझ लेनी चाहिए। प्राचीन भारत में शुद्ध धर्म के क्षेत्र में दान की परंपरा अत्यंत पवित्र और सात्विक होती थी। उसी पवित्रता की पुनर्स्थापना से देश की गौरव-गरिमा भी बढ़ेगी और लोक-कल्याण भी होगा।

पुरातन परंपरा के अनुसार जब एक भिक्षु नगर में गोचरी के लिए निकलता था तो हाथ में भिक्षा-पात्र लिए हुए, नजर नीची किए हुए, मौन रह कर क्रमशः एक-एक गृहस्थ के घर के सामने लगभग एक-एक मिनट रुकता हुआ चारिका करता था। न वह 'भिक्षाम् देहि' की आवाज लगाता था और न ही 'भूखा हूं – बाबा रोटी दो, माई रोटी दो' की रट लगाता था।

पुरातन भारत में कोई भिक्षु 'भिक्षुक' नहीं होता था। विपश्यना द्वारा भव संसरण के दुःखों का भेदन करता था इसलिए भिक्खु कहलाता था। **भिन्दति दुक्खं ति भिक्खु।** वह केवल भीख मांगने के लिए चारिका नहीं करता था बल्कि धर्म की शुद्ध परंपरा के अनुसार वह गृहस्थ को पुण्यजनक दान देने का अवसर प्रदान करने के लिए उसके घर के सामने रुकता था। मिनट भर तक घर में से कोई बाहर न निकले तो प्रसन्नचित्त से उनकी मंगल कामना करते हुए आगे बढ़ जाता था। कोई बाहर आकर उसके पात्र में भोजन

डाले तो उसकी भी मंगल कामना करते हुए आगे निकल जाता था। अक्सर होता यह था कि भिक्षुओं की चारिका के समय गृहस्थ अपने-अपने घर के सामने उत्सुकतापूर्वक उनकी प्रतीक्षा किया करते थे, जैसे कि पड़ौसी देशों में आज भी होता है।

धर्मवान गृहस्थ भोजन प्रदान कर सकने का अवसर दिए जाने के कारण भिक्षु का आभार मानता था। इस पावन प्रथा के कारण न भिक्षु के मन में भिखारी की-सी हीन भावना जागती थी और न ही गृहस्थ के मन में कोई अहंकार जागता था। दान लेना और देना दोनों निर्मल निष्कलंक रहते थे। धर्म से परिपूर्ण रहते थे।

सद्धर्म से संबंधित सभी दान इसी शुद्धता से दिये जाने चाहिए। पहले तो मन में यह चेतना जागनी चाहिए कि जिस योजना के लिए मैं दान दे रहा हूं उसके पूर्ण होने पर आज के ही हजारों लाखों लोग नहीं, बल्कि सदियों तक भावी पीढ़ियों के भी अनगिनत लोग विपश्यना की ओर आकर्षित होंगे और इस प्रकार इस दान की जड़ें सदियों तक हरी रहेंगी और फलदायी बनी रहेंगी। मेरा सौभाग्य है कि मुझे इस दीर्घकालीन फलदायी पुण्य अर्जन का अवसर प्राप्त हो रहा है। जो विपश्यी दानी हैं उनके मन में यह दूसरी शुभ चेतना जागनी चाहिए कि हमारे दादागुरु यह कल्याणकारी विद्या भारत न भेजते तो मुझे यह कैसे मिलती? कैसे मेरा कल्याण होता? अतः इस वृहद् योजना में अपनी शक्ति सामर्थ्यानुसार थोड़ा या बहुत जो भी सहयोग दे रहा हूं, वह उन महान संत सयाजी ऊ बा खिन के प्रति यत्किंचित कृतज्ञता ज्ञापन मात्र है, इस उद्देश्य से कि भारत में तथा विश्व में कल्याणी विपश्यना द्वारा लोक कल्याण का पुण्यकार्य लंबे अरसे तक गतिमान रहे और सर्वलोक मंगल की उनकी धर्मकामना पूर्ण हो! इस धर्म चेतना से दिया हुआ कोई भी सहयोग सचमुच महापुण्यफलदायी होगा।

भारत अपनी पुरातन गौरव-गरिमा के साथ पुनः जागे, विपश्यना विधा की शिरोमणि को शिरोधार्य कर विश्व के जन-जन को शांति अहिंसा का यह प्रयोगात्मक प्रशिक्षण बांटे, जिससे कि सारे विश्व का मंगल हो! कल्याण हो!

कल्याणमित्र,

सत्यनारायण गोयन्का.